प्रज्ञान की ही बोधक शक्तियाँ बताते हुए कहा गया है कि "जो यह हृदय है, वही मन भी है। संज्ञान (सम्यक् ज्ञान), अज्ञान (आदेश देने की शक्ति), विज्ञान (विविधरूपों से जानने की शक्ति), प्रज्ञान (तुरन्त जान लेने की शक्ति), मेधा (धारणा शक्ति), दृष्टि, धृति, बुद्धि, मनीषा (मनन करने की शक्ति), जूति (वेग), स्मृति, संकल्पशक्ति, मनोरथशक्ति, भोगशक्ति, प्राणशक्ति ये सभी शक्तियाँ परमात्म सत्ता की ही बोधक हैं।"[3]

तैत्तिरीयोपनिषद् में पंचकोश की अवधारणा :

तैत्तिरीयोपनिषद् में पंचकोश, आत्मा की आवरण माने गये हैं जो अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय हैं। अन्नमय कोश अन्न आदि से विनिर्मित है और इस अन्न रस युक्त देह के अन्दर प्राण रूप आत्मा पूर्ण रूप से व्याप्त है। यह प्राण रूप आत्मा निश्चय ही पुरुष के आकार का है। अन्नमय शरीर की आत्मा है प्राणमय शरीर, उस प्राणमय देह के अन्तर्गत उससे भिन्न एक मनोमय आत्मा पूर्ण रूप से व्याप्त है। यह भी निश्चय ही पुरुष के आकार का है, प्राणमय पुरुष की आकृति में व्याप्त होने से यह मनोमय शरीर अपनी पूर्ववर्ती प्राणमय शरीर की आत्मा है, उस मनोमय शरीर से भिन्न आत्मा विज्ञानमय है। जो मनोमय शरीर में पूर्ण व्याप्त है। यह विज्ञानमय देह पुरुष के आकार का है। उस विज्ञानमय देह के अन्तर्गत वह आत्मा ही ब्रह्म रूप है। उस विज्ञानमय आत्मा से भिन्न उसके अन्तर्गत आनन्दमय आत्मा पूर्णतया व्याप्त है, यह भी पुरुष के आकार का है, यह उस विज्ञानमय पुरुष देह में व्याप्त होने से पुरुष आकृति का ही है।[4] इस उपनिषद् के अनुसार शरीरस्थ आत्मा का आकार **शरीराकार** है।

तैत्तिरीयोपनिषद् उपनिषद् का संक्षेप सारांश :

यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के आरण्यक का एक भाग है। इसमें तीन बल्लियाँ (शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली और भृगुवल्ली) हैं।

शिक्षावल्ली : इस वल्ली के अन्तर्गत अधिलोक, अधिज्योतिष, अधिविद्या, अधिप्रज और अध्यात्म नामक पाँच महासंहिताओं का उल्लेख किया गया है। ऊँकार तथा इसकी भूः, भूवः, स्वः, महः आदि व्याहृतियों का विवेचन साधना के अन्तर्गत किया गया है। इस वल्ली के अन्त में अध्ययन और अध्यापन की दृष्टि से सदाचार परक मर्यादा के सूत्रों का बोध कराया गया है।

ब्रह्मानन्दवल्ली : इस वल्ली के अन्तर्गत हृदय में स्थित परमेश्वर को जानने के लिए आत्मा के पंचकलेवरों (पंचकोशों) को विवेचन किया गया है। लौकिक आनन्द से लेकर हुए इसके उत्तरोत्तर श्रेष्ठ स्वरूपों का विवेचन और अन्त में ब्रह्मानन्द की समीक्षा करते हुए परमानन्द के स्वरूप के ज्ञाताओं की अवस्था का भी वर्णन किया गया है।

भृगुवल्ली : इस वल्ली में भृगु के पिता वरुण द्वारा ब्रह्मपरक जिज्ञासा का समाधान किया गया है। वरुण ने भृगु को तत्वज्ञान समझाकर उन्हें तपश्चर्या द्वारा स्वयं उसे अनुभव करने का निर्देश दिया। भृगु ने क्रमशः अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनन्द को ब्रह्म के रूप में अनुभव किया। वरुण ने भृगु को अन्न का दुरुपयोग करने करने की शिक्षा देते हुए उसके सुनियोजन का विज्ञान समझाया है।

डा. राम किशोर, योग विज्ञान, चौखम्भा ओरिन्यन्टालिया, दिल्ली, 2018, पृष्ठ 50।

वे सभी प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं, जो पृथिवी के आश्रय में स्थित हैं। अन्न से ही वे जीवित रहते और अन्त में अन्न में ही विलीन हो जाते हैं। अन्न ही सभी तत्त्वों में श्रेष्ठ है। इसीलिए यह सर्वौषधिरूप कहा गया है। जो अन्नरूपी ब्रह्म की उपासना करते हैं, वे पुरुष सम्पूर्ण अन्न को प्राप्त करते हैं। अन्न ही सभी तत्त्वों में श्रेष्ठ है। इसलिए यह सर्वौषधिरूप कहा गया है। अन्न से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं। प्राणियों की वृद्धि अन्न से ही होती है। प्राणियों द्वारा अन्न खाया जाता है और अन्न भी प्राणियों को खाता है, इसीलिए वह अन्न (अद्यते वा अत्ति च वा अन्नं) कहा जाता है। उस अन्न रस युक्त देह से भिन्न इस देह के अन्दर प्राण रूप आत्मा पूर्ण रूप से व्याप्त है। यह प्राणरूप आत्मा निश्चय ही पुरुष के आकार का है। पुरुष की आकृति में व्याप्त होने से यह पुरुष के ही आकार का है। उस प्राणगत देह का प्राण ही सिर है। व्यान दाहिना पंख है। अपान वाम पंख है। आकाश उस देह का मध्य भाग है और पृथ्वी उसका पुच्छ एवं आधार भाग है। यह श्लोक उस प्राणगत देह के विषय में है॥ १॥

॥ तृतीयोऽनुवाकः ॥

प्राणं देवा अनु प्राणन्ति। मनुष्याः पशवश्च ये। प्राणो हि भूतानामायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यते। सर्वमेव त आयुर्यन्ति। ये प्राणं ब्रह्मोपासते। प्राणो हि भूतानामायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति। तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य। तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात्। अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य यजुरेव शिरः। ऋग् दक्षिणः पक्षः। सामोत्तरः पक्षः। आदेश आत्मा। अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति ॥

जो देवगण, मनुष्य और पशु आदि प्राणी हैं, वे प्राण के आश्रय से ही चेष्टा करते हैं, क्योंकि प्राण ही समस्त प्राणियों की आयु है, अतः यह सभी प्राणियों का जीवन है। जो प्राण रूप ब्रह्म की उपासना करते हैं, वे पुरुष दीर्घ आयु को प्राप्त करते हैं। निश्चय ही प्राण सम्पूर्ण प्राणियों का जीवन है, इसी से यह सभी प्राणियों की आयु कहा गया है। यही उस पूर्वोक्त अन्नमय शरीर की अन्तरात्मा है। उस प्राणमय देह के अन्तर्गत उससे भिन्न एक मनोमय आत्मा पूर्णरूप से व्याप्त है। यह निश्चय ही पुरुष के आकार का है। प्राणमय पुरुष की आकृति में व्याप्त होने से यह मनोमय देह भी पुरुष के ही आकार का है। उस मनोमय देह का सिर यजुर्वेद है। ऋग्वेद दाहिना पक्ष है। सामवेद बायाँ पक्ष है। आदेश उस देह का मध्य भाग है। अथर्वा और अङ्गिरा ऋषि द्वारा दृष्ट अथर्व के मन्त्र ही उसका पुच्छ एवं आधार भाग है। यह श्लोक उस मनोमय देह के विषय में है॥ १॥

॥ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति। तस्यैष एवं शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य। तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयात्। अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य श्रद्धैव शिरः। ऋतं दक्षिणः पक्षः। सत्यमुत्तरः पक्षः। योग आत्मा। महः पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति॥ १॥

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 108 उपनिषद्, ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, मथुरा, वर्ष 2010, पृष्ठ 205।

जिस ब्रह्म के आनन्द की अनुभूति में मन के साथ वाणी भी असमर्थ रहती है, उसका बोध (आनुभविक ज्ञान) करने वाला विद्वान् कभी भयग्रस्त नहीं होता। यह मनोमय शरीर अपने पूर्ववर्ती प्राणमय शरीर का आत्मा (आधार) है। उस मनोमय शरीर से भिन्न आत्मा विज्ञानमय है, जो मनोमय शरीर में पूर्ण व्याप्त है। वह विज्ञानमय देह पुरुष के आकार का है। यह मनोमय देह के अन्तर्गत पुरुष की आकृति में समाहित है। उस विज्ञानमय देह का सिर श्रद्धा है। ऋत (सनातन सत्य) उसका दाहिना पक्ष है। सत्य (प्रत्यक्ष सत्य) उसका बायाँ पक्ष है। योग उसका मध्य भाग है। 'महः' को उसका पुच्छ और आधार भाग कहा गया है। उस विज्ञानमय देह के विषय में यह श्लोक है॥ १॥

॥ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

विज्ञानं यज्ञं तनुते। कर्माणि तनुतेऽपि च। विज्ञानं देवाः सर्वे। ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते। विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद। तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति। शरीरे पाप्मनो हित्वा। सर्वान्कामान्समश्नुत इति। तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य। तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात्। अन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिणः पक्षः। प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा। ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति॥ १॥

विज्ञान ही यज्ञों और कर्मों की वृद्धि करता है। सम्पूर्ण देवगण विज्ञान की, श्रेष्ठ ब्रह्म रूप में उपासना करते हैं। जो विज्ञान को ब्रह्म स्वरूप में जानते हैं, उसी प्रकार के चिंतन में रत रहते हैं, तो वे इसी शरीर से पापों से मुक्त होकर सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि प्राप्त करते हैं। उस विज्ञानमय देह के अन्तर्गत वह आत्मा ही ब्रह्मरूप है। उस विज्ञानमय आत्मा से भिन्न उसके अन्तर्गत आनन्दमय आत्मा पूर्णतः व्याप्त है। यह भी पुरुष के आकार का ही है। यह उस विज्ञानमय पुरुष देह में व्याप्त होने से पुरुष आकृति का हो है। प्रेय उस आनन्दमय शरीर का सिर है। मोद दाहिना पक्ष है। प्रमोद बायाँ पक्ष है। आनन्द उस विज्ञानमय देह का मध्यभाग है। ब्रह्म ही उसका पुच्छ एवं आधार है। उसी आनन्दमय देह के विषय में यह श्लोक है॥

॥ षष्ठोऽनुवाकः ॥

असन्नेव स भवति। असद्ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति। तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य । अथातोऽनुप्रश्नाः । उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य। कश्चन गच्छति३ । आहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य। कश्चित्समश्नुता३ उ। सोऽ कामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा। इदꣳ सर्वमसृजत। यदिदं किंच। तत्सृष्ट्वा। तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य। सच्च त्यच्चाभवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च। निलयनं चानिलयनं च। विज्ञानं चाविज्ञानं च। सत्यं चानृतं च। सत्यमभवत्। यदिदं किंच। तत्सत्यमित्याचक्षते। तदप्येष श्लोको भवति॥ १॥

जो ब्रह्म के अस्तित्व को सत्य नहीं मानता, वह असत्य ही हो जाता है, परन्तु जो ब्रह्म को सत्य स्वीकार करता है, उसे विद्वजन सत्य समझते हैं। जो विज्ञानमय शरीर का आत्मा है, वही आनन्दमय शरीर का भी है। अब अनु प्रश्न प्रारम्भ होते हैं। अज्ञानी पुरुष मरने के बाद परलोक गमन करता है या नहीं,

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 108 उपनिषद्, ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, मथुरा, वर्ष 2010, पृष्ठ 206।

अथवा ज्ञानी पुरुष मरने के बाद परलोक गमन करता है या नहीं ? उस परमात्मा ने अनेक रूपों में प्रकट होने की कामना की। तब उसने तप किया। तप करके उसने इस सम्पूर्ण जगत् की रचना की। जगत् की उत्पत्ति के बाद वह उसी में प्रविष्ट हो गया। प्रविष्ट होने पर वह साकार और निराकार हो गया। वह वर्ण्य और अवर्ण्य हो गया तथा आश्रयरूप एवं निराश्रयरूप हो गया। वही चैतन्य एवं जड़ रूप हुआ। वही सत्य स्वरूप परमात्मा ही सत्य एवं मिथ्यारूप हो गया। विद्वज्जन कहते हैं, जो कुछ भी अनुभव में आता है, वह सत्य ही है। इसी विषय में यह श्लोक है ॥ १ ॥

॥ सप्तमोऽनुवाकः ॥

असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत। तदात्मानꣳ स्वयमकुरुत। तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति। यद्वै तत्सुकृतम्। रसो वै सः। रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयाति। यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते। अथ सोऽभयं गतो भवति यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति। तत्त्वेव भयं विदुषोऽमन्वानस्य। तदप्येष श्लोको भवति ॥ १ ॥

सृष्टि से पूर्व यह सम्पूर्ण जगत् असत् (अव्यक्त) रूप में ही था, उससे ही यह दृश्यमान जगत् उत्पन्न हुआ है। वह ब्रह्म स्वयं ही जगत् रूप में प्रकट हुआ है; अतः वह सुकृत कहा जाता है। जो सुकृत है, वही रसरूप है। इस रस को पाकर जीव आनन्दित होता है। वही आकाश की भाँति व्यापक और आनन्द स्वरूप है। यदि वह न होता, तो कौन जीवित रहता ? कौन चेष्टाएँ करता ? निश्चय ही वही सबको आनन्द प्रदान करने वाला है। जब कोई जीवात्मा उस अदृश्य, शरीर रहित, अवर्ण्य, निराश्रय परमात्मा में निर्भय होकर स्थित हो जाता है, तो वह अभयपद को प्राप्त होता है। जब तक वह (जीवात्मा) परमात्मा से विमुक्त रहता है, तब तक भय से युक्त होता है। वही भय अहंकारी विद्वान् को भी होता है। उस सन्दर्भ में यह (अगला) मन्त्र है ॥ १ ॥

॥ अष्टमोऽनुवाकः ॥

भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः। भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति। सैषाऽऽनन्दस्य मीमाꣳसा भवति। युवा स्यात्साधुयुवाध्यायकः। आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः। तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्। स एको मानुष आनन्दः। ते ये शतं मानुषा आनन्दाः। स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः। स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः। स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दाः। स एक आजानजानां देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः। स एकः कर्मदेवानां देवानामानन्दः। ये कर्मणा देवानपि यन्ति। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दाः। स एको देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं देवानामानन्दाः। स एक इन्द्रस्यानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 108 उपनिषद्, ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, मथुरा, वर्ष 2010, पृष्ठ 207।

शतमिन्द्रस्यानन्दाः। स एको बृहस्पतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः। स एकः प्रजापतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः। स एको ब्रह्मण आनन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। स यश्चायं पुरुषे। यश्चासावादित्ये। स एकः। स य एवंवित्। अस्माल्लोकात्प्रेत्य। एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतंमनोमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति। तदप्येष श्लोको भवति॥ १॥

इस (परब्रह्म) के भय से ही वायु बहता है। इसके भय से ही सूर्य उदित होता है। इसके भय से ही अग्नि, इन्द्र और पाँचवें मृत्यु के देवता यम-सभी अपने-अपने कर्मों में प्रवृत्त हैं। अब आनन्द विषयक विवेचन किया जाता है- कोई सदाचारी युवक, जो वेदों के अध्ययन से युक्त हो, सुदृढ़ अंगों वाला, बलिष्ठ, व्यवहार कुशल हो, साथ ही उसे समस्त वैभव से परिपूर्ण पृथिवी प्राप्त हो जाए, तो यह इस लोक (मनुष्य) का एक आनन्द है। जो मनुष्यलोक के सौ आनन्द हैं। वह मानव गन्धर्व के एक आनन्द के तुल्य है। वह शुद्ध अन्तःकरण वाले श्रोत्रिय मनुष्य को स्वाभाविक रूप से प्राप्त है। जो मानव गन्धर्व के सौ आनन्द हैं, वे देवगन्धर्व के एक आनन्द के तुल्य है, वह कामना रहित श्रोत्रिय मनुष्य को स्वाभाविक रूप से प्राप्त है। जो देव गन्धर्व के सौ आनन्द हैं, वह पितृलोक को प्राप्त हुए पितरों के एक आनन्द के तुल्य है, वह कामनाओं से विरक्त श्रोत्रिय मनुष्य को सहज ही प्राप्त है। जो पितृगण स्थायी रूप से पितृलोक को प्राप्त हुए हैं, उनके सौ आनन्द आजानज संज्ञक देवों का एक आनन्द है, वह कामनाओं से विरक्त श्रोत्रिय मनुष्य को सहज ही प्राप्त है। जो आजानज संज्ञक देवों के सौ आनन्द हैं, वह कर्मदेव संज्ञक देवों के एक आनन्द के तुल्य है। जो मनुष्य अपने शुभकर्मों द्वारा देवत्व को प्राप्त हुए हैं, जो कामनाओं से विरत हैं, उन्हें वह आनन्द स्वाभाविक रूप से ही प्राप्त है। जो कर्मदेव संज्ञक देवों के सौ आनन्द हैं, वह देवों के एक आनन्द के तुल्य है, वह आनन्द कामना रहित श्रोत्रिय मनुष्य को सहज ही प्राप्त है। जो देवों के सौ आनन्द हैं, वह इन्द्र का एक आनन्द है, वह कामनारहित श्रोत्रिय मनुष्य को सहज प्राप्त है। जो इन्द्रदेव के सौ आनन्द हैं, वह बृहस्पतिदेव के एक आनन्द के तुल्य है, जो श्रोत्रिय मनुष्य उस आनन्द की कामना से मुक्त है, उसे वह आनन्द सहज ही प्राप्त है। जो देव प्रजापति के सौ आनन्द हैं, वह ब्रह्मा के एक आनन्द के तुल्य है, जो श्रोत्रिय मनुष्य उस आनन्द की कामना भी नहीं रखता, उसे वह आनन्द सहज ही प्राप्त है। जो ब्रह्म इस मनुष्य में है, वही सूर्य में भी है। जो साधक इस रहस्य को जान लेता है, वह इस लोक से जाते हुए अन्नमय आत्मा को प्राप्त कर लेता है। वह इस प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय आत्मा को भी प्राप्त कर लेता है। उसी के विषय में यह श्लोक है॥ १॥

[यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि केवल पृथ्वी एवं सम्पत्ति से आनन्द प्राप्ति सम्भव नहीं है, उसके लिए समग्र व्यक्तित्व ही श्रेष्ठ होना चाहिए। अगले मंत्रों में श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर आनन्द का उल्लेख है। ऋषि बार-बार कहते हैं कि यह आनन्द "श्रोत्रियस्य च अकाम हतस्य" है, अर्थात् जो ज्ञान सम्पन्न है तथा कामनाओं से आहत नहीं है, उसी के लिए यह आनन्द है। अज्ञानी हीनसुखों में ही भटक जाता है, श्रेष्ठ आनन्द तक पहुँचना ही नहीं चाहता। छाले जैसे रोगों से आहत जीभ जिस प्रकार स्वादिष्ट व्यंजनों का रस नहीं ले सकती, उसी प्रकार कामनाओं से आहत मन-अन्तःकरण श्रेष्ठ आनन्द की अनुभूति नहीं कर पाता।]

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, 108 उपनिषद्, ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, मथुरा, वर्ष 2010, पृष्ठ 208।